भारत को समाज के निचले पायदान पर खड़े लोगों की सेवा करने को तत्पर अधिक बैंकों की जरूरत है.
– प्रोफेसर एन आर भानुमूर्ति, राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान

प्रभात खबर
रांची, रविवार
02.06.2019

मोदी सरकार 2.0 की चुनौतियां
उठाने होंगे कई मजबूत कदम

पहले कार्यकाल के दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के खाते में कल्याण योजनाओं से लेकर राष्ट्रीय सुरक्षा एवं संरचनागत परिवर्तन तक कई उपलब्धियां हैं, परंतु इस बार उनकी चुनावी जीत जितनी भारी है, दूसरे कार्यकाल में उनकी सरकार के सामने चुनौतियों का दबाव भी उतना ही बड़ा है. कृषि संकट के निवारण और ग्रामीण आर्थिकी को गति देने की दिशा में बहुत कुछ अपेक्षित है. घरेलू और अंतरराष्ट्रीय कारणों से अर्थव्यवस्था में नर्मी आयी है. कच्चे तेल के दाम में उतार-चढ़ाव और व्यापार घाटे के बढ़ने से वित्तीय घाटे एवं मुद्रास्फीति की आशंका बढ़ गयी है. अमेरिका, चीन, रूस, जापान और यूरोपीय देशों से हमारे संबंध बेहतरी की ओर बढ़े तो हैं, पर कुछ महत्वपूर्ण देशों के संरक्षणवादी और विस्तारवादी रवैये ने हमारे लिए गंभीर चुनौती पैदा कर दी है. आतंकवाद, अलगाववाद और उग्रवाद तथा पाकिस्तान के खतरनाक रवैये से निबटने के लिए सुदृढ़ सुरक्षा नीति बनाने की आवश्यकता भी है. बहुत बड़ी युवा आबादी के लिए शिक्षा एवं रोजगार की व्यवस्था करना और करोड़ों गरीबों व कम आमदनी वाले लोगों को स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराने संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना आसान नहीं हैं. मोदी सरकार के समक्ष उपस्थित कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियों के विश्लेषण के साथ प्रस्तुत है आज का **इन दिनों**...

बढ़ते श्रमबल के लिए रोजगार सृजन

भारत की 136 करोड़ की अनुमानित आबादी में 67 प्रतिशत लोग 15 से 64 वर्ष के हैं. इस लिहाज से तकरीबन 91 करोड़ लोगों को नौकरी/रोजगार चाहिए. इतने लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था करना कोई खेल नहीं है. दो करोड़ प्रतिवर्ष रोजगार सृजन के वादे के साथ 2014 में मोदी सरकार आयी थी, लेकिन ऐसा हुआ नहीं. बीते जनवरी, सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई) की जारी रिपोर्ट के मुताबिक, नोटबंदी और जीएसटी के कारण वर्ष 2018 में 1.1 करोड़ लोगों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा था. वहीं, इपीएफओ के अनुसार, अक्तूबर 2018 से अप्रैल अंत तक औसत मासिक नौकरी सृजन में 26 फीसदी की गिरावट दर्ज हुई थी. इतना ही नहीं, नौकरियों के सृजन की गति भी काफी धीमी है. हाल में मीडिया में लीक एनएसएसओ की पीरियॉडिक लेबर फोर्स सर्वे (पीएलएफएस) रिपोर्ट में कहा गया था कि वर्ष 2017-18 में औसत बेरोजगारी दर 6.1 फीसदी तक पहुंच गयी, जो 45 साल में सबसे ज्यादा है. हालांकि, अब सरकार ने भी इस आंकड़े के सही होने की पुष्टि कर दी है. सीएमआईई के आंकड़ों की मानें, तो इस वर्ष फरवरी में देश में बेरोजगारी दर 7.2 प्रतिशत थी, जबकि एक वर्ष पहले यह 5.9 प्रतिशत थी. सीएमआईई के अनुसार, इस वर्ष फरवरी में हमारे देश में करीब 3.12 लोग रोजगार की तलाश कर रहे थे, जबकि 2018 जुलाई में इनकी संख्या 1.4 करोड़ थी. वहीं, कई रिपोर्ट्स भी बता रहे हैं कि बीते कई महीनों से साप्ताहिक और मासिक बेरोजगारी दर सात प्रतिशत के आसपास बनी हुई है, जबकि इंडियास्पेंड का विश्लेषण कहता है कि प्रतिवर्ष 1.2 करोड़ लोग नौकरी के बाजार में प्रवेश कर रहे हैं, जिनमें से केवल 47.5 प्रतिशत लोग ही श्रमबल का हिस्सा बन पाते हैं. बाकी बचे लोग या तो बेरोजगार रहते हैं या फिर बेहद कम पैसों पर काम करने को मजबूर होते हैं. विश्व बैंक के अनुसार, भारत में प्रतिवर्ष 81 लाख नयी नौकरियों की जरूरत है. इतने बड़े पैमाने पर नयी नौकरियों का सृजन नयी सरकार के लिए आसान नहीं होगा.

स्वास्थ्य क्षेत्र को दुरुस्त करने की दरकार

भारत की विशाल आबादी को बीमारियों की दोहरे मार से गुजरना पड़ रहा है. हमारे देश में संक्रामक और गैर-संक्रामक (जीवनशैली के कारण होनेवाली बीमारियां) रोगों में वृद्धि हो रही है. वर्ष 2015 में होनेवाली पचास प्रतिशत मौतों की वजह संक्रामक और गैर-संक्रामक रोग थे, जबकि वर्ष 2001-03 के बीच इन रोगों से 42 प्रतिशत लोगों की मृत्यु हुई थी. विश्व के कुल टीबी रोगी का 26 प्रतिशत भारत में है, जो वैश्विक स्तर पर सर्वाधिक संख्या है. हालांकि टीबी उन्मूलन के लिए सरकार ने सार्वभौमिक टीकाकरण कार्यक्रम में नये टीके लगाने की शुरुआत भी की है. वैश्विक टीबी उन्मूलन की समय सीमा 2030 रखी गयी है, लेकिन मोदी सरकार ने इसे 2025 ही रखा है. भारत उष्णकटिबंधीय बीमारियों (मलेरिया, हैजा, डेंगू) का भी घर है. हर वर्ष हजारों लोगों की जान इन्हीं रोगों के कारण जाती है. मोदी सरकार द्वारा जोर-शोर से चलाये गये स्वच्छता अभियान के बावजूद इन रोगों में खास कमी नहीं आयी है. मलेरिया हमारे यहां आज भी जानलेवा बना हुआ है, लेकिन ओड़िशा में इस मामले में कमी आने से वैश्विक स्तर पर भारत की स्थिति सुधरी है. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसके लिए भारत की प्रशंसा की है. वायु प्रदूषण में हमारे कई शहर वैश्विक स्तर पर शीर्ष पर हैं. अक्तूबर, 2018 में आयी विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, पांच वर्ष से कम उम्र के कम-से-कम 60,987 भारतीय बच्चों की मौत का कारण पीएम 2.5 था. जल प्रदूषण के कारण भी सैकड़ों लोग हर वर्ष अपंगता के शिकार हो रहे हैं. वहीं, मातृ मृत्यु दर (एमएमआर) 22 प्रतिशत घट कर 130 (प्रति एक लाख जीवित शिशु पर) हो गयी है. सतत विकास लक्ष्य का उद्देश्य 2030 तक इस संख्या को घटा कर 70 करना है, जबकि भारत इसे 2022 तक ही प्राप्त करना चाहता है. स्वास्थ्य के कई मानकों पर भारत बेहद पिछड़ा है. इस स्थिति में सुधार के लिए सरकार द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं. आयुष्मान भारत योजना के तहत सरकार 10 करोड़ गरीब परिवारों को सालाना पांच लाख रुपये का बीमा कवर दे रही है. अनुमान है कि इससे तकरीबन 50 करोड़ लोग स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ ले पायेंगे. अपनी एक योजना के तहत सरकार ने 1.5 लाख हेल्थ और वेलनेस सेंटर स्थापित करने की घोषणा भी की थी. वहीं, मोदी सरकार की योजना नये स्वास्थ्य केंद्र और देशभर के 5,000 जन औषधि केंद्रों में पैथोलॉजी लैब खोलने की है. हालांकि, इसके लिए पैसे कहां से आयेंगे, यह एक बड़ी चुनौती है. वर्तमान में हमारे देश में बजट का केवल 2.2 प्रतिशत व जीडीपी का महज 1.5 प्रतिशत ही स्वास्थ्य पर खर्च किया जाता है. सरकार ने स्वास्थ्य बजट बढ़ाने की बात कही है. एक और बड़ी चुनौती सरकारी नीतियों के सही कार्यान्वयन और प्रबंधन की भी है. इस ओर ध्यान देने की बहुत ज्यादा जरूरत है.

कृषि संकट से निबटना होगा

वर्ष 2004-05 में जीडीपी में कृषि (कृषि, वानिकी और मत्स्य पालन) का हिस्सा 21 प्रतिशत था, जो बीते पंद्रह वर्षों में गिर कर 13 प्रतिशत पर आ गया है, जबकि इसकी तुलना में इस क्षेत्र में कार्यबल की संख्या में कोई कमी नहीं आयी है. देश में लगभग 55 प्रतिशत श्रमबल कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं. अनुमानतः 26 करोड़ लोग इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं. इस कारण देश की तकरीबन 55 से 57 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है, लेकिन सरकारी उपेक्षा के कारण इनकी स्थिति दयनीय बनी हुई है. वर्तमान में इनकी परेशानी का कारण खाद्य कीमतों में गिरावट है, जिससे उत्पादन का लागत नहीं निकल पाता और किसान कर्ज में डूबते चले जाते हैं. अंततः वे खेती से पलायन करने या आत्महत्या करने को विवश हो जाते हैं. मोदी सरकार द्वारा नया समर्थन मूल्य लागू करने के बावजूद किसानों को फायदा नहीं मिल पा रहा है. इसी वर्ष सरकार ने किसान सम्मान निधि योजना लागू की है, जिसके तहत किसानों को प्रतिवर्ष 6,000 रुपये तीन किश्तों में देने का प्रावधान है, अब हर किसान को यह राशि मिलेगी. इतना ही नहीं, मोदी सरकार की नयी नीति के अनुसार, 60 वर्ष के बाद अब हर महीने किसानों को 3,000 रुपये की पेंशन मिलेगी. इन नीतियों से किसानों की हालत कितनी सुधरती है, यह तो वक्त ही बतायेगा. नाबार्ड के अखिल भारतीय ग्रामीण वित्तीय समावेशन सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2015-16 में एक कृषक घर की आय एक महीने में औसतन 8,931 रुपये थी और इसी सर्वेक्षण के अनुसार, एक ग्रामीण परिवार पर औसतन 91,407 रुपये का कर्ज था. विशेषज्ञों का मानना है कि 2022 तक किसानों के आय को दोगुना करने के लिए प्रतिवर्ष उनकी आय को 13 से 15 प्रतिशत बढ़ाना होगा. किसानों की इस स्थिति के लिए मॉनसून भी कम जिम्मेदार नहीं है. इसी वर्ष मार्च से मई के दौरान प्री-मॉनसून बारिश में 22 प्रतिशत की कमी आयी है. इस कमी से गन्ना, सब्जी, फल कपास जैसे फसलों के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है. आइआइटी गांधीनगर के अर्ली वार्निंग सिस्टम द्वारा जारी चेतावनी के अनुसार, देश के 40 प्रतिशत से ज्यादा हिस्से में इस वर्ष सूखा पड़ने की आशंका है और करीब इसके आधे हिस्से में गंभीर या असाधारण सूखा पड़ सकता है. मॉनसून के सामान्य से बहुत कम रहने की संभावना भी जतायी जा रही है. नतीजा, फसलों की बुआई की लागत बढ़ जायेगी, साथ ही उनका उत्पादन भी कम होगा. ऐसी स्थिति में किसानों की आर्थिक स्थिति तो प्रभावित होगी ही अनाज, सब्जी की आपूर्ति कम होने और मांग बढ़ने से मुद्रा स्फीति भी बढ़ेगी. यानी महंगाई का बढ़ना तय है.

शिक्षा तंत्र में बदलाव की जरूरत

अगले साल भारतीय जनसंख्या की औसत आयु 25 साल होने का अनुमान है. ऐसे में रोजगार के समुचित अवसर पैदा करने के लिए सरकार के सामने शिक्षा के क्षेत्र में ठोस पहल करने की चुनौती है. शिक्षा का सीधा संबंध 25 फीसदी आबादी और अर्थव्यवस्था से है. विभिन्न रिपोर्टों ने रेखांकित किया है कि बड़ी संख्या में पेशेवर और उच्च शिक्षा पाये लोग वास्तव में रोजगार के लायक ही नहीं हैं तथा उनकी उत्पादकता असंतोषजनक है. इस स्थिति की बेहतरी के लिए प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा प्रणाली में आमूल-चूल बदलाव की दरकार है. जानकारों की मानें, तो इसके लिए सार्वजनिक निवेश को बढ़ाना होगा. भारत अभी अपने सकल घरेलू उत्पादन का मात्र 2.7 फीसदी शिक्षा के मद में खर्च करता है. इसे छह फीसदी करने की मांग लंबे समय से उठती रही है. सरकारी स्कूलों में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर दशकों से चली आ रही शिक्षा की बदहाली अब बेहद चिंताजनक स्तर पर पहुंच चुकी है. इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की आमद मददगार हो सकती है, पर सरकारी स्कूलों को दुरुस्त किये बिना ठोस समाधान की उम्मीद नहीं है. देशभर में 25 करोड़ से अधिक छात्र लगभग 14 लाख स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं. इनमें से 75 फीसदी सरकार द्वारा संचालित हैं. शिक्षक-प्रशिक्षण का स्तरहीन होना और आवश्यक संसाधनों का अभाव हमारी शिक्षा व्यवस्था की बड़ी खामियों में से है. नियमित रूप से संशोधित नहीं होने के कारण पाठ्यक्रम बदलते समय के लिए उपयोगी नहीं रह जाते हैं. इन्हें अद्यतन करने के साथ कौशल, विशेषकर अत्याधुनिक तकनीकी मांग के अनुरूप, को भी जोड़ना चाहिए. शोध, परिणाम एवं देश-विदेश की संस्थाओं से जुड़ाव जैसे पहलुओं के हिसाब से उच्च शिक्षा संस्थानों की समीक्षा करने की आवश्यकता है. उच्च एवं पेशेवर शिक्षा की संस्थाओं के नियमन का प्रश्न भी मानव संसाधन मंत्रालय के समक्ष होगा. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप पर संसद और संसद के बाहर उचित चर्चा व सहमति से इसे लागू कराना भी सरकार के लिए आसान नहीं होगा.

सुरक्षा पर समुचित ध्यान

सरकार को मिले प्रचंड जनादेश का एक प्रमुख आधार राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न था. पहले चरण में इस मसले पर मोदी सरकार की उपलब्धियां उल्लेखनीय रही हैं, पर उसे घरेलू अतिवाद और आतंकवाद, सेना के आधुनिकीकरण तथा चीन एवं पाकिस्तान से संभावित खतरों से निबटने जैसे मामलों से लगातार जूझना पड़ा था. हालांकि नक्सलियों पर अंकुश लगाने में बहुत कामयाबी मिली है, पर कश्मीर में आतंकवाद और अलगाववाद की चुनौती बेहद गंभीर है. पिछली सरकार के कार्यकाल के पूरा होते रक्षा बजट सकल घरेलू उत्पादन का सिर्फ 1.5 फीसदी रह गया है. इससे सेना के आधुनिकीकरण और जरूरी साजो-सामान की खरीद पर असर पड़ा है. इस कमी को पूरा करने के लिए जुलाई में पेश होनेवाले बजट में रक्षा मद में खर्च को बढ़ाने की जरूरत है. सेना के तीनों अंगों में प्रशासनिक और पेशेवर सुधारों के साथ सरकार के सामने ठोस व संतुलित राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति को तैयार करने की चुनौती भी है. आंतरिक और बाह्य सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लिए हथियारों और अन्य जरूरी उपकरणों की खरीद हमें दूसरे देशों से करनी पड़ती है. इस मामले में भारत दुनिया का सबसे बड़ा आयातक है. इससे भारी धन तो खर्च होता ही है, सामानों को पाने और सेना को सौंपे जाने में भी बेमतलब देरी होती है. इस समस्या से कुछ राहत पाने के लिए बहुत अरसे से रक्षा अनुसंधान और उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान देने की मांग उठती रही है, पर इस दिशा में हमारी प्रगति निराशाजनक रही है. वैश्विक राजनीति और रणनीति के क्षेत्र में उथल-पुथल के माहौल में हथियारों के आयात पर पूरी तरह निर्भर रहना परेशानी का कारण बन सकता है. घरेलू रक्षा उत्पादन से न सिर्फ सैन्य शक्ति को समृद्ध करने में बड़ी मदद मिलेगी, बल्कि इससे अर्थव्यवस्था को भी मजबूती हासिल होगी.

अंतरराष्ट्रीय राजनीति के पेच

विदेश मंत्री एस जयशंकर को पहले दिन से ही अमेरिका-चीन व्यापार युद्ध और ईरान पर अमेरिकी प्रतिबंध के माहौल में भारत के आर्थिक और रणनीतिक हितों को साधने की चुनौती है. चीन के साथ संबंधों को बेहतर करना भी एजेंडे में ऊपर है. अनुभवी कूटनीतिज्ञ होने तथा मोदी सरकार के पहले कार्यकाल की उपलब्धियों के कारण विदेश नीति के मोर्चे पर जयशंकर को कुछ आसानी रहेगी, परंतु अंतरराष्ट्रीय राजनीति और आर्थिकी का वर्तमान अनिश्चितताओं से भरा है. महत्वपूर्ण देशों की ओर से दबाव का सामना करना पड़ सकता है, जैसा कि ईरानी तेल के आयात के मामले में देखा गया है. ऐसे में एक सुचिंतित नीति का निर्धारण आवश्यक है. अमेरिका, जापान, रूस, फ्रांस, और यूरोपीय संघ के साथ वाणिज्यिक और सुरक्षा संबंधों को बढ़ाना तथा पड़ोसी देशों के साथ बहुआयामी सहयोग की दिशा में अग्रसर होना सरकार की प्राथमिकताएं होंगी. संयुक्त राष्ट्र और विश्व व्यापार संगठन में सुधार, सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता तथा न्यूक्लियर सप्लाइ ग्रुप में शामिल होने जैसे विषय भी सरकार के सामने होंगे. पाकिस्तान के साथ क्या रवैया रहेगा, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है. पाकिस्तान के कारण दक्षिणी एशियाई देशों के समूह सार्क फिलहाल निष्क्रिय है. सरकार को इस्लामाबाद में प्रस्तावित बैठक में हिस्सेदारी पर भी राय बनाना है. सार्क का क्या भविष्य होगा, यह भी कुछ दिनों में स्पष्ट हो सकता है. अफगानिस्तान में शांति प्रक्रिया तथा तालिबान के साथ चल रही वार्ता के बारे में भारत को स्पष्ट समझ भी बनाना है. चूंकि बहुपक्षीय व्यापार भी अब विदेश नीति का ही हिस्सा बन चुका है, ऐसे में वित्त, वाणिज्य और विदेश मंत्रालयों के बीच सहभागिता स्थापित करना भी जरूरी है.

अर्थव्यवस्था की सुस्ती

भारत विश्व की तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था है. विश्व मुद्रा कोष के मुताबिक, वर्ष 2018 में भारत के अर्थव्यवस्था की अनुमानित वृद्धि दर 7.1 प्रतिशत थी, लेकिन बीते कुछ महीनों से इसे गति देने वाले संकेतक गंभीर समस्या से गुजर रहे हैं, जिससे इसकी वृद्धि दर सुस्त हो गयी है. इस कारण वित्त वर्ष 2018-19 में जीडीपी वृद्धि दर सिर्फ 6.98 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया गया था, जबकि इसके पिछले वित्त वर्ष में जीडीपी वृद्धि दर 7.2 प्रतिशत थी. वहीं, बीते मार्च में समाप्त चौथी तिमाही में जीडीपी वृद्धि दर गिर कर 5.8 प्रतिशत पर आ गयी. अर्थव्यवस्था की इस सुस्ती का एक प्रमुख कारण औद्योगिक उत्पादन में गिरावट है. विनिर्माण क्षेत्र में सुस्ती बने रहने से इस वर्ष मार्च में देश के औद्योगिक उत्पादन (आइआइपी) में पिछले वर्ष इसी अवधि की तुलना में 0.1 प्रतिशत की गिरावट आयी है. सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, 21 माह में औद्योगिक उत्पादन का यह सबसे कमजोर प्रदर्शन है. वित्त वर्ष 2018-19 की पूरी अवधि में औद्योगिक वृद्धि दर 3.6 प्रतिशत ही रही, जो पिछले 3 वर्ष में सबसे कम है. औद्योगिक उत्पादन में गिरावट का मतलब उत्पाद के लिए मांग में कमी है. उद्योग अर्थव्यवस्था का सबसे मजबूत पहिया माना जाता है, क्योंकि यह बड़ी मात्रा में रोजगार सृजन का कारक होता है, इसमें कमी का मतलब रोजगार का घटना. आंकड़े बताते हैं कि कार की बिक्री वित्त वर्ष 2017 के सालाना 9.2 प्रतिशत और 2018 के 7.9 की तुलना में 2019 में महज 6.3 प्रतिशत ही रही है. मांग में कमी की वजह से ही अप्रैल में कारों की बिक्री में करीब 17 फीसदी की कमी आयी है, जो आठ साल की सबसे बड़ी कमी है. कार के अलावा, दोपहिया वाहनों और ट्रैक्टर की बिक्री भी घटी है. इतना ही नहीं, गैर-तेल, गैर-सोना, गैर-चांदी और कम कीमती व अर्द्ध कीमती पत्थरों के निर्यात में भी बीते चार महीने में कमी दर्ज हुई है. जीडीपी की निर्यात में हिस्सदारी भी वित्त वर्ष 2014 के 25.4 की तुलना में 2019 में 19.7 पर पहुंच गयी है. वहीं, वित्त वर्ष 2019 में राजकोषीय घाटा 7.04 लाख करोड़ रुपये रहने का अनुमान है, जो जीडीपी का 3.4 प्रतिशत है. अर्थव्यवस्था की सुस्ती को दूर करने के लिए सरकार को न सिर्फ रोजगार का सृजन करना होगा, बल्कि लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाने के उपाय भी करने होंगे.

तलाशना होगा बैंकिंग संकट का समाधान

नयी सरकार के सामने एक बड़ी चुनौती बैड लोन से निबटने व वित्तीय सेक्टर में बने नकदी संकट को दूर करने की होगी. दिवालिया कानून (आइबीसी) के जरिये एनडीए प्रथम सरकार ने इससे निबटने का कदम उठाया था. इसका लक्ष्य 10 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा के बैड लोन का समाधान निकालना था. हालांकि, अब भी बैंकों पर बैड लोन का बोझ बहुत ज्यादा है. वहीं, दिसंबर 2018 तक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां आठ ट्रिलियन रुपये से अधिक थीं. लेकिन अब वित्तीय क्षेत्र में नकदी का संकट खड़ा हो गया है, जिसका समाधान निकालना होगा. पिछले साल सितंबर में आइएल एंड एफएस के कर्ज डिफॉल्ट शुरू करने के बाद यह संकट बना है. उसके ऊपर करीब 90 हजार करोड़ रुपये का कर्ज है. इसकी वजह से बहुत-सी गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां कर्ज देने में आनाकानी करने लगी हैं. व्यापार घाटा भी बढ़ता जा रहा है. अप्रैल 2019 तक भारत का व्यापार घाटा रिकॉर्ड 15.3 बिलियन डॉलर पर पहुंच गया, जबकि मार्च में यह 10.9 बिलियन डॉलर था. वहीं, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भी कमी आ रही है. वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के आंकड़े के अनुसार, वित्त वर्ष 2019 के अप्रैल-दिसंबर माह के बीच व्यापार घाटा सात प्रतिशत की गिरावट के साथ 33.49 बिलियन डॉलर पर पहुंच गया, जबकि 2017-18 के इसी अवधि में यह 35.94 बिलयन डॉलर था. बीते कुछ समय से एफडीआइ में भी कमी आयी है. इस कमी के कारण देश के भुगतान संतुलन पर दबाव पड़ सकता है. नतीजा रुपये के मूल्य में गिरावट आ सकती है. ये वजहें महंगाई बढ़ने में सहायक होती हैं. नयी वित्त मंत्री के लिए वित्त क्षेत्र की इन समस्याओं से निबटना आसान नहीं होगा.